उभरते विश्व में भारत की स्थिति

वैश्विक परिदृश्य में तेजी से बदलाव आ रहे हैं। देशों के बीच आपसी तनाव के लिए राष्ट्र , राजनीति , समाज , व्यापार , विश्वास और बाजार जैसे कई मुद्दे खड़े हैं। एक नई वैश्विक व्यवस्था का उदय कभी भी आसान नहीं होता , और इसकी प्रक्रिया पूरे विश्व को उथल-पुथल कर देती है। एक अन्योन्याश्रित और विवश संसार में यह तनाव , समझौते , बातचीत , समायोजन और लेनदेन के माध्यम से परिणाम तक पहुँचता है। इन सब का असर अगली पीढ़ी पर दिखने की संभावना होती है।

इस बदलाव के कई आयाम होंगे , जिनमे से प्रत्येक अपने आप में संभावित अस्थिरता का एक स्रोत है। विश्व का बहुध्रुवीय होना तो स्पष्ट है। शक्ति का विस्तार होना और गठबंधन के अनुशासन में आना निश्चित है। देशों में बढ़ती राष्ट्रवादी भावना से आर्थिक हितों और संप्रभुता संबंधी चिंताओं में तेजी आएगी। बहुपक्षीय समझौतों के साथ बहुध्रुवीय होने की संभावना को निकट भविष्य के लिए आने वाली कठिनाईयों का संकेत माना जा सकता है। इतिहास गवाह है कि ऐसा दृष्टिकोण आमतौर पर असंतुलन पैदा करता है।

अमेरिका-चीन के झगड़े हमें एक ऐसे अपरिवर्तित क्षेत्र में ले जाएंगे , जो एक समानंतर संसार होगा। ये शायद शीत-युद्ध के दौरान भी मौजूद रहे होंगे। लेकिन वैश्वीकरण के युग के अन्योन्याश्रय और पारस्परिक संबंध के युग में नहीं रहे हैं।

परिणामत: कई क्षेत्रों में विविध और प्रतिस्पर्धी विकल्पों से अब आंशिक साझेदारी की संभावना रहेगी। इसे प्रौद्योगिकी , वाणिज्य और वित्त से लेकर कनेक्टिविटी , संस्थानों और गतिविधियों तक देखा जा सकेगा।

ऐसे समानांतर अस्तित्व के द्वंद में भारत जैसे देश संघर्ष करेंगे , क्योंकि उन्हें दोनों पक्षों को साथ लेकर चलना होगा।

अगर चीन और पश्चिमी देश अधिक विरोधाभास को लेकर चलते रहे , तो द्विधूवीय विश्व का वापस बन पाना मुश्किल दिखाई देता है। इसका प्राथमिक कारण विश्व का अपरिवर्तनीय रूप से बदल जाना हो सकता है। भारत सहित कई राष्ट्र अब स्वतंत्र राह पर है। विश्व की 20 सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से आधी अब गैर-पश्चिमी हैं। प्रौद्योगिकी और जनसांख्यिकी अंतर भी इन देशों के व्यापक प्रसार में सहभागी बनेगा। सच्चाई यह है कि अमेरिका की पकड़ कमजोर हो गई है , और चीन का पूर्णोदय अभी बाकी है। इस प्रकार दोनों प्रक्रियाओं ने एक-दूसरे-के लिए जगह खाली कर रखी है।

विश्व में गठबंधनों के बीच विभाजन एक प्रकार का विकास था , और उनसे परे जाना दूसरा कदम था। जैसे-जैसे दुनिया अधिक बहुलवादी होती गई , परिणामोन्मुखी सहयोग अधिक आकर्षक लगने लगे। यह देशों के लिए अधिक सुविधाजनक था। इनमें विपरीत प्रतिबद्धताओं के साथ सामंजस्य स्थापित किया जा सकता था। इस प्रकार की पहल एशिया में सबसे अधिक हुई है , क्योंकि यहाँ क्षेत्रीय ताने-बारे में एकरूपता भी है।

भारत आज ऐसे बहुपक्षीय समूहों के नेता के रूप में उभरा है। वैश्विक तरलता की व्यापकता को देखते हुए भारत को प्रत्येक प्रमुख क्षेत्र में संबंध बनाने की चुनौती का समाधान करना चाहिए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित एस. जयशंकर के लेख पर आधारित। 6 अगस्त , 2020